Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

दृश्यमान सांगीतिक बोधाभिव्यंजना

धर्मेन्द्र कुमार
शोधार्थी, दृश्यकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।
ए. के. जैतली
प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।

शोध–सार – कतिपय धारणाएं ऐसी हैं जिन्होंने भारतीय कला रूपों और शैलियों पर गहरा प्रभाव डाला है। मिथकों, उपाख्यानों, धार्मिक कर्मकाण्डों और अनुष्ठानों में अनेक रचनात्मक कलाओं, विचारों तथा अवधारणाओं को अपने अनुरूप ढाला है। लघु–चित्रण परम्परा में रूपगत प्रश्नों के बहुत रोचक होते हुए भी उनका कोई सांगीतिक, सैद्धान्तिक आधार स्पष्ट नहीं है। निःसन्देह प्रकृति एवं मनुष्य के अन्तर्सम्बन्धों का विषद् वर्णन जो हमें मध्यकालीन साहित्य एवं काव्यों में प्राप्त होता है, उसकी अनुभूतिपरक प्रस्तुति लघु–चित्रण में हम देख सकते हैं। नायक–नायिका भेद वर्णन, बारहमासा एवं रागमाला चित्रण हमें एक सांगीतिक अनुभव कराती है जिसमें प्रकृति एवं मनुष्य के स्वभावगत रहस्यात्मक अनुभव रूपायति हुए हैं। प्रस्तुत शोध पत्र, रागमाला के दृश्यमान सांगीतिक अनुभव, जिसमें लघु–चित्रण निरूपण कला–चेतना, स्थितियां, सांगीतिक, सैद्धान्तिक आधार तथा प्रक्रिया आदि का अनुशीलन इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किया गया है, कि क्या कला, सिद्धान्त एवं विधियों से युक्त रागमाला चित्रों का लयात्मक स्पन्दन, शब्दों के बोध, रहस्यात्मक अन्तर्ध्वनि की बानगी, रूप एवं रागाधारित चित्रों का नामकरण जैसे सांगीतिक अनुभव, दर्शक एवं रचनाकार की आनुभाविक प्रवृत्तियां भाव विशेष जगाने में सहायक होती हैं।

मुख्य शब्द– दृश्यमान, सांगीतिक, बोधाभिव्यंजना, सांगीतिक, सैद्धान्तिक।

साहित्यिक परिप्रेक्ष्य– भारतीय कला में एक महत्वपूर्ण रूपगत और शैलीगत तत्व 'रेखीय तत्व' है जो प्रायः रचना की विशेषता है। मध्य कालीन भारतीय चित्रण परम्परा में हमें रीतिकालीन साहित्य एवं काव्य का आधार स्पष्ट दिखाई देता है। जयदेव कृत 'गति गोविन्द' प्रेम काव्य के रूप में अप्रतिम कृति है। मध्य काल में गीत गोविन्द काव्याधारित अनेक अभिव्यक्तियां चित्रकारों नें हमें दी।[1] अवधी भाषा में मुल्लादाउद द्वारा लिखित 'लोर चन्दा' में प्रेम गाथा के अनेक चित्रात्मक स्वरूप हैं। रीति परम्परा के प्रवर्तक केशवदास की 'रसिक प्रिया' के आधार पर मुग़ल एवं पहाड़ी शैली में अनेकानेक चित्रकल्पनाएं प्राप्त हैं। 'बिहारी सतसई' तथा अन्य ब्रजभाषा काव्यों के आधार पर 18 वीं शती ई0 में चित्रकारों ने नायक–नायिका चित्रण में प्रकृति और मानव की चेतना, अपरिमित सौन्दर्य और प्रेम का प्रवाह आदि प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।[2] संस्कृत साहित्य में प्रकृति विषयक वर्णन अत्यधिक प्राप्त होता है।

SHISRRJ214241 | Received : 07 May 2019 | Accepted : 25 May 2019 | May-June 2019 [2 (3) : 222-226]

कालिदास द्वारा लिखी गई 'मेघदूत' उत्कृष्ट रचना है, जिसमें वियोग एवं श्रृंगार को प्रतीकात्मक आधार पर प्रस्तुत किया गया है। कवियों ने शब्दों के माध्यम से जो रूप चित्र प्रस्तुत किया, चित्रकारों ने उसे रंगों, रेखाओं और प्रतीकों के आधार पर साकार कर दिया। 'बारहमासा' तथा 'षड्ऋतु' वर्णन प्रकृति और मनुष्य के रहस्यात्मक संवादों को मूर्त करते हैं। यद्यपि रागमाला चित्रण में भी हम, मनुष्य और प्रकृति, वियोग, श्रृंगार तथा ऋतुओं का सम्मिलित प्रभाव देखते हैं, फिर भी संगीत के व्यावहारिक और सैद्धान्तिक तर्कों को रागमाला चित्रों में देखा जाता रहा है। रागों की बानगी, अन्तर्ध्वनि तथा स्वरों और शब्दों के बोध रूप एवं रागाधारित चित्रों का नामकरण जैसे आधार सांगीतिक अनुभव से हमें जोड़ते हैं।[3]

राग–रागिनी –नाट्य शास्त्र में राग–रागिनी विवेचन प्राप्त नहीं है। संगीत में राग शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम मतंग की 'वृहत्देशी' में मिलता है। नारद के संगीत 'मकरंद' और नाट्य शास्त्र के मध्य इसका रचनाकाल माना जाता है। रागिनी शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख पंचमसार संहिता में प्राप्त होता है। इतिहासकार सातवीं से ग्यारहवीं शताब्दी के बीच रचित इस रचना में पुरूष का (मुख्य राग) और प्रत्येक की छह स्त्री (अधीन राग) रागों के परिवारों का वर्णन है। उपरोक्त वर्गीकरण में कुछ स्वाभाविक रागों के लिए नपुंसक शब्द का भी प्रयोग किया गया है। सोमेश्वर द्वारा रचित मानसोल्लास या अभिलाषितार्थ चिन्तामणि में शुद्ध, भिन्न व गौण रागों का उल्लेख प्राप्त होता है। ग्यारहवीं सदी की नान्यदेव सरस्वती साहित्यालंकार की रचना में मूल राग, स्वरिख्य राग तथा देशख्य राग आदि का वर्णन मिलता है। सारंगदेव द्वारा रचित संगीत रत्नाकार में रागमाला परम्परा में पुत्र रागों का नामकरण भी हुआ। राग–रागिनी से उपजी नई रागें इसी श्रेणी की हैं। इन्ही रचनाओं में रागों का देवताओं आदि से सम्बन्ध स्थापित किया गया, और सात स्वरों का विभिन्न जानवरों की आवाजों से साम्य निश्चित कर स्थाई सप्तक का आधार बना दिया गया। मोर से षड़ज, चातक से रिषभ, बकरे से गंधार, सारस से मध्यम, कोयल से पंचम, दादुर से धैवत और गज से निषाद् स्वरों का साम्य निश्चित हुआ।[4]

रागमाला में निहित विचार कालान्तर में संगीतज्ञों के माध्यम से कवियों ने प्राप्त किये। संगीतकारों की मान्यता थी कि संगीत के दो रूप हैं– 'ध्वनि रूप' और 'दृश्यमान रूप'। दृश्यमान का तात्पर्य शारीरिक स्वरूप से रहा, 'काल सापेक्ष' एवं 'दिक् सापेक्ष'। शायद इसीलिए संगीतकार संगीत की साधना से पूर्व, दैवी शक्ति की आराधना किया करते थे। कालान्तर में राग–रागनियों के गायन समय, प्रतीक, मूल पुरूष देवता, नायिका, वातावरण आदि सुनिश्चित होते गये। अमूर्तन का स्वरूप प्राकृतिक उपादानों में तलाशा गया। कवियों एवं साहित्यकारों तथा संगीतज्ञों के ज्ञान चित्रकारों की तूलिका एवं कल्पना के आधार बने। ग्रंथों में जयदेवकृत 'गीत गोविन्द', महाराजा कुंभा की टीका 'रसिक प्रिया', खेमकरण की रागमाला, तानसेन की रागमाला, मुहम्मद रज़ा खां कृत नग़माते आसफ़ी, बीकानेर के राजा अनूप सिंह के आश्रित संगीतज्ञ भावभट्ट के 'अनूप संगीत विलास' अनूप संगीत रत्नाकर व 'अनूप संगीतांकुश आदि उल्लेखनीय है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य – सिकन्दर लोदी (1487–1517) संगीत प्रेमी थे। इनके राज्यकाल में फ़ारसी में संगीत का पहला ग्रन्थ 'लहज़त–ए–सिकन्दर शाही' लिखा गया। इसकी रचना उमर याहिया ने की जो अरबी, फारसी और संस्कृत का विद्वान था। 15 वीं शताब्दी में सांस्कृतिक पुनरूत्थान का जो युग भारत में प्रारम्भ हुआ, वह मुग़लों के शासन काल में, विशेषकर अकबर से शाहजहां तक के काल (1556–1658 ई0) में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया। भारतीय इतिहास में गुप्तकाल के बाद यह छह सौ वर्ष का युग दूसरा स्वर्ण युग था, जिसमें भारतीय संस्कृति को

अधिकाधिक प्रोत्साहन मिला, और उसकी अभूतपूर्व प्रगति, संरक्षण तथा सम्वर्द्धन हुआ। 16 वीं शताब्दी के बड़े–बड़े दरबारी संगीतज्ञ या तो ग्वालियर के होते थे या वे मश्शाद, तबरेज़ आदि ईरानी नगरों से आते थे। संगीत की कश्मीरी परम्परा की स्थापना 15 वी. शताब्दी में जैनुल आबदीन के संरक्षण में ईरान और तूरानी संगीतज्ञों ने की थी। ग्वालियर संगीत परम्परा की स्थापना का श्रेय नायक भिक्षु को है जो 16 वी शती में राजा मानसिंह तोमर के दरबार से सम्बद्ध रहे।[5]

अकबर, धार्मिक कट्टरता से मुक्त एक उदार शासक था। उसने भारतीय दर्शन और विभिन्न धर्मों का अध्ययन किया। बड़े–बड़े संगीतज्ञों को अपने दरबार में आश्रय देकर उसने भारतीय संगीत के विकास में महात्वपूर्ण कड़ियाँ जोड़ दीं। अकबर के दरबार के नवरत्नों में तानसेन, भारतीय संगीत के महान संगीतज्ञ माने जाते हैं। अबुल फ़ज़ल ने आइने–ए–अकबरी में संगीत के जादू की आश्चर्यजनक शक्ति का वर्णन किया है। अबुल फ़ज़ल लिखते हैं कि तानसेन जैसा गवैया भारत में पिछले एक हजार वर्ष में भी नहीं हुआ। तानसेन ने कई नए राग और रागिनियां निकाली, जैसे मियां की मल्हार, दरबारी कानड़ा , मियां की सारंग और मियां की टोड़ी, गुजरी टोड़ी के आविष्कार का श्रेय भी तानसेन को दिया जाता है। निश्चित रूप से हिन्दू–मुस्लिम संगीत पद्धतियों का सुन्दर समन्वय जो 15 वीं शताब्दी में आरम्भ था, उसे अकबर के संरक्षण में तानसेन जैसे कलाविदों ने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया।

जहांगीर के शासन काल में भी कलाकारों का वही सम्मान होता रहा जैसा अकबर के दरबार में होता था। ऐतिहासिक साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि जहांगीर को चित्रकला से ज्यादा प्रेम था। जहांगीर का राज्यकाल चित्रकला के विकास का काल कहा जाता है। शाहजहां के दरबार में भी बड़े–बड़े संगीतज्ञों के आश्रय का उल्लेख प्राप्त होता है। तानसेन द्वारा स्थापित की हुई परम्परा पर ही ध्रुपद का गायन यहां होता था, दरबार के हिन्दू कलावन्तों में जगन्नाथ चोटी के गायक थे।

भक्ति सन्तों का संगीत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। वैष्णव सन्त गीतों को बड़ा महत्व देते थे। बल्लभाचार्य स्वयं एक संगीतज्ञ थे। मध्यकाल में गेय काव्यों की परम्परा भी संगीत को समृद्ध करती रही। वास्तव में मध्यकालीन गति का अर्थ उस कविता से ही है, जो संगीत पद्धति के अनुसार गेय हो, तुलसीदास की विनय पत्रिका और गीतावली भी ऐसे ही गेय काव्य हैं। मेवाड़ के महाराज सांगा के पुत्र भोजराज की पत्नी मीराबाई भी निपुण संगीतज्ञ थी। उनका रचित 'मीराबाई का मल्हार' नामक राग भी प्रसिद्ध है।[6]

बंगाल की संगीत परम्परा भी अत्यन्त प्रभावशाली रही है, प्राचीन काल से ही बंगाल साहित्य एवं संगीत का केन्द्र रहा है। 10 वी.–11वी. शताब्दी में राग–संगीत का यहाँ प्रचलन रहा। 12वीं शताब्दी में सैन वंश के राजा लक्ष्मण सैन संगीत से अत्यन्त प्रेम करते थे। जयदेव इनके दरबार से ही थे, जयदेव ने गीत–गोविन्द में प्रबन्ध गीतों की रचना की जिसमें रागों और विभिन्न तालों का समन्वय किया गया। चण्डीदास और विद्यापति ने 14 वी.–15वी. शताब्दी में कृष्ण–कीर्तन की पद्धति चलाई। ये विभिन्न रागों और तालों में विभिन्न रस और भावों के साथ गाये जाते थे। श्री चैतन्य (1485–1533 ई0) के साथ बंगाल में नए युग का प्रवर्तन हुआ। चैतन्य, कीर्तन पर अधिक जोर देते थे, और राधा–और कृष्ण की प्रेममय भक्ति के लिए संकीर्तन को ही सर्वोत्तम साधन मानते थे। स्वरूप दामोदर, राय रामानन्द, मुरारी गुप्त जैसे कलाकार इनके शिष्य थे। श्री चैतन्य के पश्चात् नरोत्तम दास, आचार्य श्री निवास आदि वैष्णव सन्तों ने बंगाल में पद कीर्तन को पुनर्जीवित किया। 16वी.–17वी. शताब्दी में वृन्दावन और मथुरा, भारतीय संगीत के प्रमुख केन्द्र थे।[7]

रागमाला चित्रण परिप्रेक्ष्य – 15 वी.–16 वी. शताब्दी से संगीत सम्बन्धी चित्र रचना प्रारम्भ मानी जाती है। 17वी. –18वी. शताब्दी में राजस्थानी (राजपूत) शैली के अन्तर्गत इन चित्रों का प्रचार–प्रसार हुआ। चित्र और संगीत के तात्विक अन्वेषण की एक सुदीर्घ परम्परा रागमाला चित्रों में हमें प्राप्त होती है, यह चित्र संगीत और चित्रकला के पारस्परिक सम्बन्धों पर तो प्रकाश डालते ही हैं, साथ–साथ मध्यकालीन लोकभावना का भी प्रतिनिधित्व करते है, जो भक्ति पर आधारित तत्कालीन धर्म, साहित्य, चित्रकला और संगीत आधारित सांस्कृतिक पक्षों को प्रेरित करती थी।

मुगल काल में संगीत की अभूतपूर्व उन्नति हुई। 1570 ई0 में क्षेमकरण ने 'रागमाला' नामक ग्रन्थ लिखा। 1610 ई. में सोमनाथ ने 'राग विमोघ' लिखा। 15 वी. शताब्दी में दामोदर मिश्र ने 'संगीत दर्पण' नामक ग्रंथ की रचना की जिससे संगीतशास्त्र में शिवमत की स्थापना माना जाती है। इन्होंने मूल छः राग छत्तीस रागिनियां मानी और उनके गाए जाने का समय निश्चित किया। 17 वी. शताब्दी का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ पंडित अहोबल का 'संगीत परिजात' था।

दृश्यमान संगीत.– निःसन्देह 'रागमाला' में निहित विचार और कल्पना कवियों ने संगीतज्ञों से प्राप्त की। चित्रकारों नें 'रागमाला' सम्बन्धी कविताओं में वर्णित बिम्बों को 'रागमाला चित्रण' में आधार स्वरूप ग्रहण किया। कृष्ण–लीला, नायक–नायिका भेद और अनेक प्रेम साहित्य से सम्बद्ध विचार चित्रों में व्यक्त हुए। जनश्रुतियों और विभिन्न मतों ने भी चित्रकला को प्रभावित किया। कल्लिनाथ मत, ब्रम्ह मत, हनुमत मत एवं भरत मत, राग–रागनियों में गाये जाते थे। रागमाला में सभी रस और रंग हैं, गुणकली, बसन्त, हिण्डोला, श्री और मालकोष संयोग पक्ष के प्रतीक हैं तो धना श्री, माल श्री, कुकुभ, टोड़ी, भैरवी, रूबावती, बंगालो और सेत मल्हार रागनियां, श्रृंगार की प्रतीक हैं।[8]

राग–माला चित्रों में जिस विषय–वस्तु का सबसे अधिक चित्रण प्राप्त है, वह थी विरहणी नायिका,–वियोग श्रृंगार। इस भाव के अन्तर्गत प्रणय–सन्देश की प्रतीक्षा में कमल की पंखुरियां चुनती हुई (माल श्री) पति का रूप चित्र अंकित करती (धन श्री रागिनी) वन में भटकती हिरणों से घिरी (टोड़ी), पति के सुरक्षित लौटने की कामना से शिव आराधना में लीन (भैरवी) पार्वती सदृश तपस्विनी बनी नायिका (देव गांधर) आदि अपने वियोग के क्षणों को प्रकट करती है।

विरहिणी नायिका के बाद रागमाला चित्रों में जिस विषय–वस्तु का बार–बार चित्रण मिलता है वह है– 'संयोग श्रृंगार'। नायक जब घर लौट के आता है, तब पहले तो नायिका उससे रूठने का प्रयास करती है। विलास के लिए अनिच्छुक नायक के तन पर प्रणय–चिन्ह देख नायिका प्रतिक्रिया करती है (रामकली), नृत्य करके पति को रिझाती (बसन्त, मेघ मल्हार) हिण्डोले पर झूलकर (हिण्डोल) संगीत गोष्ठी का आयोजन (श्री, मालकोश) प्रणय पर्व की तैयारी (बैरागी, मालवी, दीपक) और पुनर्मिलन का ऊषा काल का आगमन एवं रति–क्रीड़ा का अंत (विभास) संयोग श्रृंगार में परिलक्षित होता है।[9]

शोपेन हावर ने संगीत को सब कलाओं की कला के रूप में स्वीकार किया था। छोटा शिशु बोलने से पहले कुछ गुनगुनाता है, और इसी गुनगुनाने में धीरे धीरे अक्षरों, शब्दों और वाक्यों का विकास होने लगता है, जिससे भाषा बनती है। भाव की यह रूपित अभिव्यक्ति गति है, स्पन्द है, लयात्मक संरचना है, जिसे हम संगीत का नाम देते हैं।[10] इसी लयात्मक स्पन्दन और उर्जा की अनेक धारायें हैं, जो साहित्य, काव्य, नृत्य, अभिनय, चित्र, मूर्ति व वास्तु आदि अनेक नामों से प्रकट होती है, इनमें संगीत व्याप्त हैं। रागमाला चित्रों में छुपा सांगीतिक अनुभव रूपगत आधार से युक्त है, जहाँ प्रकृति एवं मनुष्य की चेतना, रंगों एवं रेखाओं से सम्पृक्त हैं, जो संगीत के सैद्धान्तिक रागों के समानांतर, एक दृश्य रागों के रूप में उपस्थित हैं।

निष्कर्ष – सृजन से पूर्व कलाकार अपने अन्तःकरण में ध्यान योग से एक परिकल्पित विम्ब को प्रतिष्ठित करता है, उसका रसास्वादन कर कलाकार आंशिक निवृत्ति प्राप्त कर लेता है, पुनः अभिव्यक्ति की आतुरता उसे सृजन के लिए उत्प्रेरित करती है। रागमाला चित्रों में छुपा सांगीतिक अनुभव रूपगत आधार से युक्त है, रचनाकार का दृष्टिकोण परंपरावादी हो सकता है और स्वच्छंदतावादी भी, चूँकि रचना का उद्देश्य रूपगत आधार और चेतना का मनोवैज्ञानिक चित्रण है; अतः रचना अपनी बोध–भूमि के कारण ही संरचित हो सकती है। जब तक कलाकार अनुभूति को रूपायित नहीं कर लेता, उसे पूर्ण विश्रान्ति प्राप्त नहीं होती। रागमाला चित्रों का लयात्मक स्पन्दन उसकी विशेषता है, जो एक अनिवार्य तत्व के रूप में रागमाला चित्रों उपस्थित हैं, जिसमें रागों की बानगी, अन्तर्ध्वनि तथा स्वरों और शब्दों के बोध रूप एवं रागाधारित चित्रों की रहस्यात्मक अन्तर्ध्वनि को सांगीतिक दृश्य अनुभव द्वारा देखा जाना समीचीन होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा हरद्वारी लाल, कला में संगीत साहित्य और उदात्र के तत्व, पृष्ठ 4
2. सुमहेन्द्र, संगीत, काव्य एवं कला की त्रिवेणी, सुजस पृष्ठ 40
3. रामनाथ, मध्यकालीन भारतीय कलाएं एवं उनका विकास पृष्ठ 28
4. रामनाथ, मध्यकालीन भारतीय कलाएं एवं उनका विकास पृष्ठ 28
5. रामनाथ, मध्यकालीन भारतीय कलाएं एवं उनका विकास पृष्ठ 29
6. रामनाथ, मध्यकालीन भारतीय कलाएं एवं उनका विकास पृष्ठ 30
7. सुमहेन्द्र, संगीत, काव्य एवं कला की त्रिवेणी, सुजस पृष्ठ 40
8. मिश्रा प्रेमा, भारतीय सौन्दर्यशास्त्र एवं ललित कलाएं पृष्ठ 159–169
9. एबेलिंग क्लास, रागमाला, स्पैन–दिस. 1973 पृष्ठ 20–22
10. राय निहाररंजन, भारतीय कला का अध्ययन, पृष्ठ 135